स्वावलम्बन की एक झलक पर

न्योछावर कुबेर का कोष

Swawlamban ki Ek jhalak par

प्रस्तावना : मानव विवेकशील प्राणी है। जिस विषय पर दूसरे प्राणी विचार नहीं कर सकते हैं, उन पर वह चिन्तन करता है। इसी कारण वह संसार के समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ माना जाता है। जहाँ एक ओर उसमें विद्या, बुद्धि और प्रेम आदि श्रेष्ठ गुण वर्तमान है, वहीं दूसरी तरफ वह राग, द्वेष और हिंसा आदि बुरी प्रवृत्तियों से भी ओत-प्रोत है। श्रेष्ठ तत्त्वों का अपने अन्दर विकास करने के लिए मानव को स्वावलम्बी बनना पड़ेगा; क्योंकि इसके बिना कोई भी उसकी सहायता नहीं करता है। यही कारण है कि मनुष्य ने स्वावलम्बन को विशेष महत्त्व दिया है।

स्वावलम्बन का अर्थ : दूसरों का सहारा छोड़कर केवल अपने सहारे पर जीवन बिताना स्वावलम्बन कहलाता है। स्वावलम्बन शब्द स्व+अवलम्बन से बना है जिसमें स्व=स्वत: का तथा. अवलम्बन=आश्रित का वाचक है। अतः स्वावलम्बन का सामान्यत: अर्थ यही लगाया जाता है कि प्रत्येक मनुष्य को आत्म-विश्वास और अपने ही पर अवलम्बित रहना चाहिए। अपने विषय में स्वत: ही व्यक्ति अधिक अच्छी प्रकार से जान सकता है। उसमें अपने पैरों पर स्वत: खड़े होने की क्षमता होती है। चाहे छोटा कार्य हो या बड़ा ऐसा व्यक्ति उसे सम्पादित करने के लिए किसी दूसरे का मुँह नहीं ताकता है। अपने पैरों पर खड़ा होने वाला व्यक्ति न तो समाज में निरादर पाता है और न घृणा का पात्र ही होता है। वह अपने बल पर पूर्ण विश्वास करता है।

यद्यपि यह सत्य है कि विश्व का कोई भी कार्य एकाकी नहीं होता, संसार में प्रचलित कथन है कि 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता है।' इससे हमें प्रमाद न लेकर प्रेरणा लेनी है और समाज में अकेले अधिकाधिक कार्य करने हैं तथा जिस कार्य को करने के लिए कोई भी तैयार न हो, उसे हम हिम्मत के साथ अकेले पूर्ण कर इस पुरानी कहावत को बदल दें। इसलिए कोई भी कार्य कठिन-से-कठिन क्यों न हो, उसे पूर्ण करने में मनुष्य को अपने

ऊपर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। यदि दूसरे सहायता दे दें, तो ठीक है; किन्तु उसे परमुखापेक्षी बनने की आवश्यकता नहीं होती है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वावलम्बन मानव का वह गुण है जो उसे आत्मविश्वासी बनाता है। जो व्यक्ति स्वयं कर्मठ एवं स्वावलम्बी नहीं है, ऐसे व्यक्ति की कोई भी सहायता नहीं करता है और ऐसे व्यक्ति का जीवन पशु से भी हेय होता है। वास्तव में जीवन उसी का सार्थक है जो स्वावलम्बी है क्योंकि 'स्वावलम्बन जीवन का मूल मंत्र है।'

स्वावलम्बन का महत्त्व : जो लोग स्वावलम्बन को एक ढकोसला। तथा सिद्धान्त मात्र मानते हैं, वह अपनी अल्पज्ञता का परिचय देते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार का विपरीत तर्क करते हैं, वे कुण्ठाओं से आवृत होते हैं। ऐसे लोग तर्क. के आधार पर स्वावलम्बी जीवों को एकान्त में खड़े होने वाले अरण्य का वृक्ष मानते हैं। सामाजिक प्राणी होने के नाते ऐसे व्यक्तियों को समाज पर अवश्यमेव निर्भर होना पड़ता है। यह तर्क रखते हैं, उनका यह तर्क वजनी अवश्य है; किन्तु यह सही दिशा की ओर संकेत नहीं करता है। यदि मनुष्य स्वयं अपना कार्य करना प्रारम्भ न करे अथवा वह सोचे कि दूसरे आकर उसका कार्य कर देंगे तो यह न होगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वावलम्बन की। उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

स्वावलम्बन चाहे व्यक्ति का हो, समाज अथवा राष्ट्र का, वह समान रूप से महत्त्व रखता है। दूसरे व्यक्ति का मुख देखने वाला मानव, दूसरे समाज पर आशा लगाने वाला समाज, किसी अन्य देश पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्भर रहने वाला राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता; क्योंकि उसे प्रति समय सहायता नहीं मिल सकती और कार्य प्रारम्भ करने में दूसरे की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यथा-

अरहर के एक छोटे से खेत में एक नन्ही-सी गौरैया ने घोंसला बनाया था। फसल पकने से पूर्व उसने अण्डे दिए ; किन्तु फसल पक जाने पर भी उसके बच्चे उड़ने योग्य न हो सके। चिडिया नित्य प्रात:काल चारा चुगने चली जाती और जब संध्या अपनी चादर फैलाती थी, तो वह अपने नीड में वापस आ जाती थी। एक दिन जब वह घोंसले में वापस आयी, तो उसके बच्चों ने कहा, "माँ ! आज किसान आया था और कल वह अपने पड़ोसियों की सहायता से इस खेत को काटेगा।" गौरैया मुस्काई और बोली, "डरो मत मेरे बच्चो, यह खेत अभी नहीं कटेगा।" इसी क्रम से कई दिन तक किसान अन्यों के सहयोग से खेत काटने की

बात सोचता रहा। आखिरकार एक दिन उसने स्वयं काटने का निश्चय किया। तब चिडिया बच्चों के साथ दूसरे खेत में चली गई। यह कहानी स्वावलम्बन की महत्ता को स्पष्ट कर देती है।

इस असीम विश्व में स्वावलम्बन के महत्त्व को अनेक महापुरुषों ने व्यक्त किया। महात्मा कबीर इसी स्वावलम्बन की ओर संकेत करते हुए कह गए हैं-

करु बहियाँ बल आपनी, छाँडि विरानी आस ।।

जाके आँगन है नदी, सो कत मरत पियास ।।

कुछ कायर जन होते हैं जो बात-बात पर पुरानी रूढियों को मानते हुए परावलम्बन का परिचय देते हैं। जैसे कुछ पुरुष यह जानते हुए कि इस कुएँ का पानी खारा है; परन्तु पिता का बनवाया हुआ है यह मानकर पीते हैं- 'तातस्य कूपस्य अयमिति ब्रुबाणा : क्षार जल कापुरषा: पिबन्ति।' ऐसे ही कायर पुरुष भाग्यबाद के चक्कर मई पड़ते हैं, ऐसों ही के लिए जो महात्मा ने संकेत किया है, "कादर मनकर एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा ।।" अत: "दैवेन देयमिति का पुरुषा: विदन्ति। दैवं सफलता निहत्थ्य कुरु पौरुषयात्म शक्तया।।"

यदि संस्कृत मनीषी की इस बात को हम मान लें, तो निश्चय रूप से सफलता हमें प्राप्त होगी । क्योंकि उर्दू कवि का कथन " हिम्मते मर्दा, मद्दै खुदा' भी इसी को अभिव्यक्त करता है।

अत: प्रत्येक छोटे से छोटे कार्य हिम्मत के साथ स्वावलम्बनपूर्वक हमें स्वयमेव कर लेने चाहिए, इस में पूर्ण संतोष की प्राप्ति होती है।

स्वावलम्बन से लाभ : स्वावलम्बन से अनेक लाभ हैं। जीवन का सच्चा सार स्वावलम्बन से ही प्राप्त होता है। स्वावलम्बन में पुरुषार्थ और परिश्रम दोनों ही आ जाते हैं। जो मानव अपने कार्यों में दूसरों का सहयोग नहीं चाहता, भाग्य के नाम पर हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठा रहता वह सदैव उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता जाता है। संसार में ऐसा कोई भी वैभव या सुख नहीं है जिसे स्वावलम्बी व्यक्ति प्राप्त न कर सके।

स्वावलम्बी पुरुष संसार में मनचाहा सुख पाता है। जो अपने हाथों से काम नहीं करना चाहता है, आलसी है या अपने हाथों से कार्य करने में लज्जा का अनुभव करता है, ऐसा दूसरों के सहारे पर रहने वाला व्यक्ति सदा दुःख पाता है। कुछ लोग घर पर नौकर रखकर सभी काम उन्हीं से कराया करते हैं। घर में स्त्री होते हुए भी रोटी नौकर से बनवाते हैं। ऐसे लोगों का शरीर निकम्मा हो जाता है और वृद्धावस्था में उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। स्वावलम्बी पुरुष मरते समय तक कार्य करता रहता है। उसका शरीर, मस्तिष्क और बुद्धि निकामे नहीं बनते। वह सदा स्वस्थ और सुखी रहता है।

स्वावलम्बन से आत्म-गौरव बढ़ता है। अपना कार्य स्वयं करके एक विशेष आनन्द और गौरव का अनुभव होता है। कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये आत्मगौरव परमावश्यक है।

स्वावलम्बन से देश हित : स्वावलम्बी पुरुष का सभी सम्मान करते हैं। वह कठिन से कठिन कार्य से भी जी नहीं चुराता । उसके हृदय में उत्साह और भुजाओं में बल होता है। वही देश और समाज का कल्याण कर सकता है। उसका शरीर भले ही अमर न हो सके; किन्तु उसका यश अनन्त काल के लिए अमर रहता है। दूसरे के हमले करने पर वह स्वयं रणक्षेत्र में जाकर युद्ध करके देश का हित करता है।

स्वावलम्बी व्यक्तियों के उदाहरण : विश्व के प्रायः सभी महापुरुष स्वावलम्बन के द्वारा ही महान् बने। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने वन में स्वावलम्बन के बल पर ही सेना संगठित कर रावण पर विजय प्राप्त की। कंस का वध कृष्ण ने स्वावलम्बन के आधार पर ही किया। राजकुमार चन्द्रगुप्त की सहायता कोई न करता यदि वह स्वावलम्बी न होता। स्वावलम्बी, व्यक्ति स्वयमेव अपने भाग्य का विधाता होता है। नेपोलियन बड़ी निम्न स्थिति का व्यक्ति था; किन्तु स्वावलम्बन से वह महान् विजेता बन गया। हजरत मुहम्मद और ईसामसीह आदि ऐसे ही पुरुष थे जो स्वावलम्बन के बल पर महान् व्यक्ति बन गए । गाँधी जी, नेहरू, शास्त्री एवं बिनोबा भावे भी अपने स्वावलम्बन से ही विश्व में नाम कमा गये। जो लोग-

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।

इस सिद्धान्त को मानकर आलसी बन जाते हैं, उनके लिए उन्नति के सभी मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। ऐसे लोग संसार में सुख व यश से वंचित रहते हैं।

स्वावलम्बन की शिक्षा : बच्चे की प्रथम पाठशाला घर है। अत: बचपन से ही माता-पिता अपने बच्चों को बात-बात पर स्वावलम्बन का पाठ पढाएँ। अधिक से अधिक वस्तु बच्चे से स्वत: मॅगाएँ, उसे स्वावलम्बी महापुरुषों की कहानियाँ सुनाएँ। शिक्षा केन्द्र भी इस ओर

विशेष ध्यान दें; क्योंकि छोटे-छोटे बच्चों में जब अपना कार्य स्वयं करने की भावना भर जायेगी, तो वे स्वयं स्वावलम्बी बन जायेंगे। इनके लिये प्राचीन गुरुकुल प्रणाली बहुत उत्तम थी, जिसमें पुष्पवाटिका का सिंचन एवं खेती करने का भी विधान था। छात्र को प्रति क्षेत्र की शिक्षा दी जाती थी। वह आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे के समान पानी के लिये। लालायित होता था। दूसरे का मुख नहीं ताकता था और नौकरी के लिए वह बिल्कुल नहीं।

स्वावलम्बन स्वाधीनता का प्रतीक है, इसके विपरीत परावलम्बन पराधीनता का द्योतक है। इस पराधीनता में क्षण भर को भी सुख नहीं, जैसा कि तुलसीदास ने व्यक्त किया-

"कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं ।।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।।"

व्यास जी ने भी इस सत्य की ओर संकेत किया है।

"सर्वं परावशं दुख सर्वमारमवशं सुखम् ।"

प्राचीन शिक्षार्थी इन बातों को सर्वदा सम्मुख रखता था।

उपसंहार : यदि संसार में हम अपना नाम कमाना चाहते हैं और अपने देश को उन्नत देखना चाहते हैं, तो हमें स्वावलम्बन को अपनाना ही पड़ेगा; क्योंकि स्वावलम्बी व्यक्ति किसी के दाने-दाने को मुँहताज नहीं बनता है। वह अपने परिश्रम से पर्याप्त कमा लेता है और निरादर के धन को तो अति तुच्छ समझता है; क्योंकि उसके स्वावलम्बन के आगे कुबेर का कोष (खजाना) भी व्यर्थ है। हमें स्वावलम्बन की शिक्षा संकेत साकेत वर्णित पंचवटी की सीता से लेना चाहिए, लक्ष्मण का कथन सीता के चरित्र को उभार देता है-

“अपने पौधों में जब भाभी भर-भर पानी देती हैं,

खुरपी लेकर आप निरातीं जब वे अपंनी खेती हैं।

पाती हैं। जब कितना गौरव, कितना सुख, कितना संतोष,

स्वावलम्बन की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष ।।”